कुछ तो, बताओ मनोरमा

प्रफुल्ल कोलख्यान

सूरज से अलग हुए काफी दिन बीत चुके थे। धरती धीरे-धीरे ठंढी हो चुकी थी। रोज सूरज अपनी नर्म निगाहों की कोमल परस से धरती को जगाया करता था। आसमान में चाँद चमकता था। चाँदनी धरती को अपने वजूद से को दुलराया करती थी। आसमान से तारे धरती को नीहारा करते थे। तारों का वजूद ओस में ढलकर धरती के पोर-पोर में समाने लगी थी। धरती और आसमान में संवाद का सिलसिला शुरू हो चुका था। इस सिलसिला का गवाह था हिमालय। हिमालय पिघलने लगा था। आसमान के ताप से कभी तो, कभी धरती की आँख से। धारा का प्रवाह शुरू हो गया था। नदियाँ बहने लगी थी। तालाब भरे हुए थे। धरती माँ बन रही थी। माँ की कोख में कभी, तो गोद में कभी प्रकृति ने खेलना शुरू कर दिया था। मछली चहकने लगी थी। आसमान में मेघ मचलने लगा था। बादल चुपचाप धरती को सरसा जाया करता था। ना जाने किस बात पर बादल आपस में टकराने लगे थे। उनके टकराव को रोकने के लिए सूरज की किरणें बिजली की तरह उनके बीच आती थी। गरज-तरज के साथ बादलों का जोबन धरती की छाती पर फट पड़ता था। धरती हरी दूब के गहनों से अपना शृँगार कर चुकी थी। पंछी चहचहाते थे। अपनी सतरंगी डोरी से रामधनु पूरी कायनात को किरणों का अनुपम हार पहनाता था। रामधनु सतरंगे सितार में बदलने लगा था। तिनका में गीत सोया रहता था। चिड़िया अपनी चोंच में धरती का गीत दबाये आकाश के अंतिम छोर तक पहुँ जाते थे। सतरंगी सितार में धरती के गीत छुपाते थे और अपने डैनों पर सितार की मधुर झनकार के साथ धरती पर लौट आते थे। इस झनकार से फूल खिलते थे। चिड़या बिना थके निरंतर उड़ान पर रहती थी। सितार अनबरत बजता रहता था। बेशुमार फूल खिलते रहते थे। इन फूलों की गंध हवा की मुसकान बन गई। होठों में अबूझ बात दबाये हवा अक्सर मुस्कुराती रहती थी। प्रकृति अपने ताल, छंद, सुर लय पर नाचती रहती थी। इसी बीच चुपके से मन का भी जन्म हो गया था। धरती मनोरमा बन गई थी।

मनोरमा के मन में एक दिन तूफान आया था। यह तूफान आदमी लेकर आया था। आदमी का दिमाग फिर गया था। पूरी प्रकृति की मनाही का कोई अर्थ नहीं रह गया था। आदमी की इस हरकत के कारण सितार फिर से रामधनु में बदलने लगा था। रामधनु को देखकर मनुष्य ने धनुष रच डाला था। चिड़या की चोंच में दबा तिनका अब आदमी के तरकश का तीर बन गया था। आदमी ने एक दिन खेलते हुए क्रौंच जोड़े पर उस तीर को छोड़ दिया था। जब तक कवि की करुणा उसे रोकती तब तक क्रौंच की चीख पूरी धरती पर फैल गई थी। नदी काँप गई थी। हिमालय इस आघात से हिल गया था। सितार झनझनाकर खमोश हो गया था। दूब सहमकर

धरती के भीतर समा गई थी। बादलों में टकराहट बढ़ गई थी। बिजली ने रोकना चाहा था। आदमी बिजली को टूटे हुए सितार के तार से बाँधने की कल्पना कर रहा था। मनोरमा का छंद बिगड़ गया था। मनोरमा के छंद बिगड़ जाने से धरती हिल गई थी। ज्वालामुखी फूट पड़ा था। वर्षों तक धरती हिलती ही रह गई थी। सबने मनोरमा धरती को मनाया था। घरती का छंद नहीं लौटा था। धरती का मन शांत नहीं हुआ था। हाथ जोड़कर अंत में धर्म आया था। खोये हुए छंद को फिर से धारण करना ही होगा, धर्म ने धरती को समझाया था। धीरे-धीरे ज्वलामुखी शांत हो गया था। चारों तरफ पत्थर फैल गया था। चारों तरफ पत्थर ही पत्थर था। मनोरमा पत्थर बन गई थी। बरसा आकर चली गई थी। पत्थर नहीं बदला था। आँधी आये, बिजली चमकी, पक्षी चहचहाये, नदियाँ भी मिलकर चली गई, सूरज की किरणों ने समझाया, चाँदनी ने रोते हुए दूधिया-स्नान कराया, दूब ने भी अपनी हरियरी न्यौछावर की मगर पत्थर नहीं बदला था। पत्थर कभी नहीं बदलता है, सबने कहना शुरू कर दिया था। इसे सुनकर पत्थर बहुत रोता था। पत्थर भी पत्थर बने रहना नहीं चाहता था। पत्थर ताना सुनता था। पत्थर रोता था। पत्थर बदल नहीं पाता था। पत्थर बदलना चाहता था। पत्थर बदला।

हुआ यह कि पत्थर के पास फूल का पौधा उग आया था। पत्थर और फूल में धीरे-धीरे बात शुरू हो गई। एक दिन क्या हुआ कि अचानक पत्थर पर फूल आकर गिरा था। एक दिन, दो दिन एक फूल, दो फूल फिर कई दिन, कई फूल पत्थर पर गिरता रहा था। फूल के गिरने से पत्थर बदल रहा था। पत्थर धीरे-धीरे फूल का गीत गुनगुनाने लगा था। मगर पत्थर तो ठहरा पत्थर, बहुत देर हो चुकी थी। इधर पत्थर बदल रहा था तो उधर फूल भी बदल रहा था। ऐसी ही किसी अमा निशा में पत्थर और फूल जब मिले तो दोनों पूरी तरह बदल चुके थे। आश्चर्य से हवा ने देखा था, चिड़िया ने देखा, सूरज की किरणों ने देखा, चाँदनी ने देखा, आसमान से सितारों ने देखा ओर दाँतों तले अँगुली दबाई थी। पत्थर ओर फूल दोनों एक दूसरे से लिपटे हुए थे। मगर, यह क्या हो गया था! पत्थर थोड़ा जरूर नरम पड़ गया था। मगर फूल! फूल पत्थर बनकर चारों तरफ बिखर गया था! सभ्यता के सीने में यह बात धँस गई थी। सभ्यता ने होश सँभाला तो इन पत्थरों को इकट्ठा किया। इकट्ठा होने से ये पत्थर मंदिर बन गये थे। सभ्यता ने उस मंदिर को `खुजराहो मंदिर' का नाम दिया था। पता नहीं सच है या झूठ है, लेकिन लोग कहते हैं कि उन्हीं पत्थरों में से किसी-न-किसी को मुहब्बत महल की हर नींव में डाला जाता रहा है। तब से अब तक कितनी बार फूल और पत्थर एक दूसरे से मिले, बदले। मिले, बदले और मंदिर तथा महल बनाये जाने के काम आते रहे। मनोरमा को याद नहीं। कितना सच झूठ कितना, कितना दूध पानी कितना! तुम्हीं बताओ मनोरमा! क्या! पथरा चुकी मनोरमा को कुछ भी याद नहीं! ओफ्फ! याद करो मनोरमा, कुछ तो याद करो!